सोचने का भारतीय नजरिया पश्चिम से अलग क्यों

भारतीयों के सोचने के तौर-तरीके को लेकर प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी कार्ल गस्ताव जुंग बड़े आश्चर्यचकित थे। उनके हिसाब से एक भारतीय सोचता नहीं है, बल्कि 'वह विचारों का प्रत्यक्ष करता है'(अनुभूति करता है) । एक न सोचने वाला पर प्रत्यक्ष करने वाला मानस विविधताओं को स्वीकार करता है और समग्र को आत्मसात करता है, जब कि सोचने वाला मानस जो उपलब्ध है, उसको अलग-अलग कर ग्रहण करता है। इस प्रकार की दृष्टि विविधता के लिए असहिष्णुता पैदा करती है और किसी एक की श्रेष्ठता स्थापित करती है। आज से लगभग तीन चौथाई शती पहले 1939 में *ह्वाट कैन इंडिया टीच अस* शीर्षक लेख जो न्यूयॉर्क की *एशिया* नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, उसमें जुंग ने भारतीय चिंतन के स्वभाव को लेकर कुछ इस तरह से अपनी बात रखी थी। वह कहते हैं कि पश्चिम की विकसित दुनिया में हमारे मानस के चेतन और अचेतन इन दो पक्षों का आपस का साथ छूट गया और दोनों के बीच एक गहरी टूट आ गई। इस टूट या विच्छिन्नता के चलते चेतन मानस को अतार्किकता (इर्रेशनैलिटी) और आदिम उद्वेगों (प्रिमिटिव इम्पल्स) से छुटकारा तो मिला, पर इस उपलब्धि के लिए उसे भारी कीमत भी चुकानी पड़ी। ऐसा करते हुए वह एक व्यक्ति को उसकी पूरी समग्रता में ग्रहण करने की क्षमता को खो बैठा। मनुष्य चेतन और अचेतन दो अलग व्यक्तित्वों के बीच विभाजित हो गया। चेतन मानस को तो इच्छानुसार रच सकते हैं, क्योंकि उसे प्राकृतिक और आदिम मनुष्य से अलग कर दिया गया। इसका फल यह हुआ कि पश्चिमी मनुष्य एक ओर तो बड़ा अनुशासित, सुसंगठित और तार्किक हो गया पर उसका दूसरा हिस्सा, जो शिक्षा और सभ्यता से कटा था ज्यों का त्यों एक दमित आदिम ही बना रहा। दोनों असम्बद्ध रहे और व्यक्तित्व दोफांक हो गया। इस टूट के चलते व्यक्तित्व में एक गहरा द्वैध आ गया। जुंग के हिसाब से यह टूट ही पश्चिमी मनुष्य के व्यवहार में दिखी। वह एक ही समय श्रेष्ठता के साथ-साथ बर्बरता के कामों में भी शामिल होने लगा। इस विसंगति की व्याख्या जुंग व्यक्तित्व की टूटन से करते हैं।

गिरीश्वर मिश्र

कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि, वर्धा

> भारत हमारे सामने सभ्य होने का एक दूसरा मार्ग भी प्रस्तुत करता है, वह रास्ता जो बिना दमन, बिना हिंसा और बिना तार्किकता के है।

इसी से यह बात भी स्पष्ट होती है कि विज्ञान के उच्च शिखर और तकनीकी उपलब्धियों की ओर आगे बढ़ते हुए पश्चिमी मानस अपने आविष्कारों का गलत उपयोग भी करता है। यह जीवन के लिए बेहद खतरनाक होता जा रहा है। उदाहरण के तौर पर, जुंग इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाते हैं कि मनुष्य की आकाश में उड़ने की कल्पना, जो कभी एक सपना थी, अब वायुयान द्वारा एक सच्चाई में बदल चुकी है। पर उड़ने की उसी शक्ति के साथ-साथ हम आज के युद्ध में विमानों द्वारा की जा रही भीषण बमबारी भी देख रहे हैं। जुंग पूछते हैं कि क्या इस तरह की भीषण विसंगति को सभ्यता कह सकते हैं? क्या इससे यह बात पुष्ट नहीं होती है कि जब हमारा मानस आकाश की ऊंचाइयों को छूने चला, तो हमारे मनुष्य का दूसरा पहलू, वह दमित बर्बर मनुष्य, नरक की तरफ आगे बढ़ गया?

जुंग मानते हैं कि पश्चिमी जगत में मनुष्य की अंतिम गति जो भी हो, विश्व में एक ऐसी सभ्यता का उदाहरण मौजूद है, जिसमें आदिम जीवन की हर अनिवार्य विशेषता सुरक्षित है और जो संपूर्ण मनुष्य को अपने भीतर संजोए हुए है। जुंग यह कहकर भारत का उल्लेख करते हैं। वह कहते हैं कि भारत की सभ्यता और मानसिकता उसके मंदिरों के स्थापत्य जैसी हैं, जिसमें मनुष्य के सभी पक्ष और सारे क्रिया-कलाप, चाहे वे संत जैसे हों या पशुवत, समग्रता में उपस्थित हैं। शायद इसीलिए भारत स्वप्न सरीखा लगता है। यहां हम सुदूर अचेतन में चले जाते हैं, जो मूलतः असभ्य और आदिम है। इसके बारे में हम सिर्फ सपना देख सकते हैं, क्योंकि हमारी चेतना उसे नकार देती है। भारत हमारे सामने सभ्य होने का एक दूसरा मार्ग भी प्रस्तुत करता है, वह रास्ता जो बिना दमन, बिना हिंसा और बिना तार्किकता के है। आप इन सभी को, जो विपरीत लगते हैं, अगल-बगल उपस्थित देख सकते हैं। आप उसी शहर में, उसी गली में, उसी मंदिर में अत्यंत उत्कृष्ट परिष्कृत मानस और आदिम मानस, दोनों ही में उपस्थित हैं।

जुंग मानते हैं कि भारत की तार्किक प्रक्रियाएं अजीब-ओ-गरीब-सी लगती हैं और यह जानना समझना भी आश्चर्यचकित कर देता है कि पश्चिमी विज्ञान के तमाम हिस्से किस तरह उन चीजों के साथ आसानी से शांतिपूर्वक अगल-बगल मौजूद रहते हैं, जिन्हें अपने अज्ञानवश हम अंधविश्वास कह बैठते हैं। भारतीय मानस इस तरह के अंतर्विरोध की ज्यादा परवाह नहीं करता। वह इनके प्रति काफी सहिष्णु है। भगवद्गीता कहती है कि सबको देखना ही देखना है। सोचने वाले मानस का वैयक्तिकता पर आग्रह होता है और प्रत्यक्ष करने वाला संपूर्ण को देखने की चाह रखता है। सब कुछ को आत्मसात करना, सबकी चिंता करना, सबके मंगल की कामना और सबको साथ ले चलने का आग्रह वैदिक काल से ही भारतीय चिंतन में दिखाई पड़ता है। समग्रता का आग्रह आज भी प्रासंगिक है।